भावनाओं पर लगाम

वीणा शिवपुरी

काफ़ी समय से मेरे मन में कुछ विचार उठ रहे हैं जिन्हें मैं सबके साथ बांटना चाहती हूं। मुमकिन है कोई सार्थक बहस पैदा हो। यहां मैं अपने, सबके बारे में बात करना चाहती हूं। जो औरतों के मुद्दों से जुड़ कर काम कर रही हैं और खुद भी औरत हैं । वे सभी औरतें जो किसी न किसी स्तर पर अन्याय और शोषण से जुझ रही हैं या उसकी सीधी शिकार हैं।

मन का लावा

हमने देखा है कि चेतना और जागरूकता के साथ अन्याय और शोषण का अहसास तेज़तर हो जाता है। आशा, निराशा और जोश जैसी भावनाओं से पैदा होती है तेज़ गुस्से की भावना और मरने मारने की इच्छा। सामान्य रूप से समाज और पुरुष के खिलाफ गुस्से का लावा इकट्ठा हो कर अपने आस-पास बिखरने लगता है।

गुस्से की भावना सकारात्मक हो सकती है यदि हम उसे अपनी ऊर्जा बना सकें। अपनी ताक़त बना सकें। यदि वह हमें काम करने और डटे रहने के लिए प्रेरित कर सके। बेलगाम गुस्सा न सिर्फ़ व्यक्तिगत जीवन और संबंधों को तहस-नहस कर सकता है, बल्कि हमें कड़वाहट से भरा नकारात्मक व्यक्तित्व देता है। उससे न खुद अपना विकास होता है और न आंदोलन को मदद मिलती है।

अपने जाती अनुभव से मैंने जाना कि कई बार भावनाएं हम पर हावी हो जाती हैं। या यूं कहें कि बेकाबू हो जाती हैं। वह भावना चाहे निराशा, दुख, जोश, बेबसी की हो या फिर नफ़रत और गुस्से की। बेकाबू भावना हालात में बदलाव तो कम ही ला पाती है, परंतु हमें शारीरिक और मानसिक रूप से बीमार जरूर कर सकती है।

आखिर क्या करें?

यह सच है कि मारपीट, बलात्कार, दबाव, अपमान और अन्याय की घटनाएं मन में आग पैदा कर देती हैं। औरत होने के नाते वे सब दुख हमें अपने लगने लगते हैं। ऐसे में भावनाओं में बह जाना कोई ताज्जुब की बात नहीं।

इसीलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अपनी नकारात्मक भावनाओं को सकारात्मक रास्तों पर डालना सीखें। उन्हें सीमाओं में बांधना, उनसे निपटना जानें।

मेरे कहने का यह मतलब नहीं कि हमारी कथनी और करनी में फ़र्क हो। मैं तो यह कहना चाहती हूं कि हमारी सोच, हमारे रवैयों और कार्रवाइयों का आधार सिर्फ भावनाएं न हों। उनके साथ व्यवहारिकता और तर्क का गठजोड़ हो, तभी संतुलन क़ायम रह सकता है।

एक तरफ कुआं, दूसरी तरफ खाई

एक ओर हम सख्त गुस्सा और नफ़रत पालने की भूल कर सकती हैं। दूसरी ओर कभी-कभी अपने दुखों में डूब जाने की भूल भी करती हैं।

यह सच है कि दमन और उत्पीड़न की शिकार औरत उदासी और अकेलापन महसूस करती है। उसे सहारे और दर्द में साझेदारी की ज़रूरत होती है। इस तरह का बहनापा और प्यार दे पाना नारी आंदोलन और संगठनों की ताक़त रही है। परंतु यह ताक़त कमज़ोरी में भी बदल सकती है। यदि इस सहारे और साझेदारी के ज़रिए औरत मज़बूत बनने की जगह अपनी भावनाएं सहलाए जाने की आदी बन जाए। या फिर दुख की दुनिया में डूब कर जीवन की धारा से कट जाए।

यह सही है कि बलात्कार, यौन उत्पीड़न और मारपीट के घाव मन पर ज्यादा गहरे लगते हैं। पर यह भी सही है कि यदि उनसे लड़ना है तो अपने आपको बेचारी, दुखियारी मान कर आंसू बहाने से काम नहीं चलेगा। और न ही उन जख्मों को तमग़े की तरह छाती पर चिपका कर जीवन भर के लिए शहीद बनने की ज़रूरत है।

बांध बांधें

अपने दर्द से निपटने, अन्याय से लड़ने और हादसों के बावजूद भरपूर ज़िंदगी जीने की ताक़त खुद अपने ही अंदर ढूंढनी पड़ती है। उस ताकत को पाने की प्रक्रिया में ज़रूर संस्थाएं व सहेलियां मददगार हो सकती हैं।

— इसके लिए ज़रूरी है कि हम समस्याओं को सही परिपेक्ष्य में देखें।
— कभी-कभी उनसे अलग हट कर ज़रा दूरी से जांचें।
— अपने भीतर जीने की इच्छा शक्ति और आत्मिक ताक़त पैदा करें।
— कड़वाहट और निराशा की जगह बदलाव लाने का आशावादी नजरिया रखें।
— कई बार ध्यान व आध्यात्म से भी मानसिक संतुलन मिलता है।
— किसी 'वाद' या 'सिद्धान्त' को न पकड़ कर अपनी दवा खुद ढूंढे।

महिला संस्थाओं और कार्यकर्ताओं की कोशिश होनी चाहिए कि हादसे की शिकार औरत भावनात्मक रूप से अपने पैरों पर खड़ी हो पाए।

सारांश

संघर्ष करने, नई दुनिया बनाने के लिए जोश, उत्साह, आशा और गुस्से की ज़रूरत है। हम सभी इंसान हैं, कभी निराश भी होती हैं तो कभी उदास भी। कभी सहारा देती हैं तो कभी दूसरों से चाहती हैं। भावनाएं हमारी ज़िंदगी का अहम हिस्सा हैं। परंतु चौकस रहने की ज़रूरत है कि हम अपनी ज़िंदगी और ये दुनिया बेहतर बनाने के लिए भावनाओं का इस्तेमाल करें, न कि खुद उनके हाथों की कठपुतली बन जाएं। □